वेद और गो-पालन

लेखक

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेद और गो-पालन

लेखक
आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
पूर्व आचार्य, वेद विभागाध्यक्ष एवं कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालंधर

वेद और गो-पालन

१

वैदिक गृहस्थ के जीवन में गौ का स्थान

वैदिक गृहस्थ के जीवन में गौ का बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौ उस की एक बहुत प्यारी सम्पत्ति है। उसे जब कभी अपने भगवान् से ऐश्वर्य की प्रार्थना करनी होती है तो उस ऐश्वर्य में और-और वस्तुओं के साथ प्रायः गौ भी अवश्य सम्मिलित रहती है। पचासों स्थानों पर वेद में प्रभु-भक्त याचक द्वारा अपने भगवान् से गृहस्थ के अभीष्ट ऐश्वर्य में गौओं की अभ्यर्थना की गई है। वह एक नहीं, अनेक गौवें अपने पास रखना चाहता है। उदाहरण के लिये अथर्व. २.२६ में वह कहता है—

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु। अथर्व. २.२६.२।

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ।।

अथर्व. २.२६.४।

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्।। अथर्व. २.२६.५।

प्रंथम मन्त्रखण्ड का अर्थ है—"मेरे इस गौओं के ठहरने के घर में (गोष्ठ) पशु बह कर आवें"। अगले दोनों मन्त्रों का अर्थ देने से पहले इस वाक्य के सम्बन्ध में दो पंक्तियें और लिख देना आवश्यक है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में जो पशु दिन के समय बाहर जंगल या खेतों में चरने चले गये थे उन्हें वापिस बुलाया जा रहा है। वे सुख-पूर्वक वापिस मेरे घर में आ जावें यह प्रार्थना की जा रही है। प्रस्तुत मन्त्रखण्ड उसी प्रसङ्ग में दूसरे मन्त्र का प्रथम चरण है। इस में पुशओं के लौट कर आने के लिये 'सं स्रवन्तु' क्रिया का प्रयोग किया गया है। इस का शब्दार्थ है "बह कर आवें"। यह क्रिया उन वस्तुओं के चलने में प्रयुक्त होती है जो चलते हुए ऐसा प्रतीत हो कि मानो धारा में चल रहे हैं। जैसे, सेनाओं का चलना, नदियों आदि के पानी का बहना इत्यादि। यहाँ इस क्रिया के प्रयोग से यह अवगत होता है कि वापिस लौट कर आ रहे पशु एक, दो या दस-पाँच नहीं हैं, प्रत्युत वे इतने अधिक हैं कि चलते हुए उन का एक प्रवाह-सा आता हुआ प्रतीत होता है। लौट कर उन के घर में ठहरने के स्थान

को 'गोष्ठ' कहा गया है। गोष्ठ का शब्दार्थ वह घर या स्थान है जहाँ गौवें ठहरें। इस शब्द के प्रयोग से यह व्यंजित होता है कि इन पशुओं में गौओं की प्रधानता है। गोष्ठ शब्द के प्रयोग से ही यह बात व्यक्त नहीं होती। ऊपर उद्धृत किये गये दोनों मन्त्रों से यह बात आप ही सुव्यक्त है। इन मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है–

"मैं गौवों के दूध को अपने शरीर में सिंचन करता हूँ, उन के घी से मैं अपने शरीर में बल और रस (वीर्यादि) सिंचन करता हूँ, उन के दूध और घी से हमारे घर के सारे ही वीर (पुरुष) सिंचित होते हैं, मुझ गोपति में गौवें स्थिर हो कर रहें।"

"मैं अपने इस घर (अस्तकम्) में गौओं का दूध लाता हूँ (आहरामि), धान्य और रस लाता हूँ, यहाँ वीर (पुरुष) आये हुए हैं और उन की पत्नियाँ आई हुई हैं।"

इन मन्त्रों में दूध-घी खाने के लिये 'सिच्' क्रिया का प्रयोग हुआ है। इस का अर्थ सींचना होता है। खेतों और उद्यानों आदि को प्रभूत जल प्रदान कर के आप्लुत करने को सींचना कहते हैं। वैदिक गृहस्थ दूध-घी खाता नहीं, वह अपने आपको उस से सींचता है। वह छटाँक-दो-छटाँक या पाव-दो-पाव दूध-घी से तृप्त नहीं होता, उसे उस के कटोरे-के-कटोरे और घड़े-के-घड़े चाहिये। तभी तो हमारा घर 'वीरों' और वीर-पत्नियों से भर सकता है। जिस घर के लोगों को अपने आपको दूध-घी से सींचना हो उन्हें एक दो गौवों से कहाँ सन्तुष्टि हो सकती है, उन्हें घर में बह कर आती हुई गौवों की धारा की आवश्यकता है।

इसी लिये जब गो-प्रिय वैदिक गृहस्थ अथर्व. ३.१२ में अपने रहने के लिये एक सुन्दर शाला (घर) का निर्माण करता है तो उस को और-और ऐश्वर्यों से भरने के साथ 'गोमती ...घृतवती पयस्वती' (अथर्व. ३.१२.२) और 'घृतमुक्षमाणा' भी बनाता है। उस में गौवें रख कर उसे घी और दूध से भरना चाहता है, इतना भरना चाहता है कि वह हमारे लिये घी सिंचन करने वाली (उक्षमाणा) बन सके। वह अपनी शाला के सम्बन्ध में इच्छा रखता है कि उस में–

आत्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पदन्दमानाः।

अथर्व. ३.१२.३।

एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः। अथर्व. ३.१२.७।

"सायंकाल को बाहर से चर कर बछड़े और उछलती हुई गौवें आया करें।" "दही से लबालब भरे (परिस्रुत) कुम्भ और कलश रहा करें।" वह अपनी पत्नी को प्रतिदिन कहना चाहता है कि—

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्।
इमां पातॄनमृतेना समङ्‌ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम्।।

अथर्व. ३.१२.८।

"हे नारि ! इस कुम्भ को अमृत से भरी हुई घी की धारा से पूरा भर ले और फिर इस अमृत से इन पीने वालों को खूब चिकने, सुन्दर और कान्तिमान् शरीर वाला बना (सम्-अङ्ग्ध), हमारे द्वारा किये हुए इष्ट और आपूर्त के शुभ कर्म इस घर की रक्षा करते रहें।"

अथर्ववेद के दो सूक्तों के इन उद्धरणों से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि अपने घी-दूध से उस के शरीर को सींच कर चिकना, सुन्दर, बलिष्ठ और कान्तिमान् बनाने वाली गौ और तज्जन्य पदार्थों से वैदिक गृहस्थ को कितना प्रेम है और वह उन्हें कितने भारी मात्रा में अपने पास रखना चाहता है। यहाँ और भी कितनी ही उद्धरण इस भाव को स्पष्ट करने के लिये दिये जा सकते थे। हम विस्तारभय से ऐसा नहीं करना चाहते और इस की कोई आवश्यकता भी नहीं है। वेद का प्रत्येक पारायण करने वाला जानता है कि वैदिक आर्य गृहस्थ के लिये गो-धन की कितनी कीमत है और वह धन को पाने के लिये कितना उत्सुक रहता है और भगवान् से इस के लिये कितनी प्रार्थनायें करता है। साधारण दृष्टि से भी वेद की एक बार आवृत्ति कर लेने से यह बात विदित हो सकती है।

गौओं के लिये राष्ट्रिय प्रार्थना

न केवल वेद का प्रत्येक गृहस्थ ही अपने लिये वैयक्तिक रूप में भगवान् से गो-धन की याचना करता है प्रत्युत कई स्थलों पर सारे राष्ट्र के लोगों के लिये भी गो-धन की याचना की गई है। उदाहरण के लिये यजुर्वेद का निम्न मन्त्र देखिये—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।

जुः. २२.२२।

जिस अध्याय का यह मन्त्र है उस का शतपथ में अश्वमेध में विनियोग किया गया है। अध्वर्यु इस मन्त्र द्वारा अश्वमेध करने वाले सम्राट् के राष्ट्र में अभ्युदय की प्रार्थना भगवान् से कर रहा है। वह कहता है—"हे भगवन् (ब्रह्मन्), इस के राष्ट्र में ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण उत्पन्न हों, शस्त्र चलाने में निपुण, दूर का निशाना बींधने वाले, महारथी, शूर क्षत्रिय हों, दूध देने वाली गौवें उत्पन्न हों, भार उठाने में समर्थ बैल हों, शीघ्रगामी घोड़े हों, नगरों की रक्षा करने वालीं (पुरंधिः) स्त्रियें हों, इस यजमान (सम्राट्) के पुत्र (वीरः) विजयी, रथारोही, सभाओं में जाने योग्य और युवा हों, जब-जब हम चाहें तब-तब बादल बरसा करें, अनाज (ओषधयः) फल वाले हो कर पका करें, हमें अलब्ध ऐश्वर्य की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा (योगक्षेमः) प्राप्त हो"। मन्त्र में उत्पन्न होने के लिये 'आ जायताम्' क्रिया का प्रयोग हुआ। इस में है। इस में 'आ' उपसर्ग की व्यंजना देखने योग्य है। "आ' का अर्थ होता है 'समन्तात्'—'चारों ओर'। इस लिये 'आ जायताम्' क्रिया का भाव यह हुआ कि मन्त्र में वर्णित ब्राह्मणादि एक दो नहीं, प्रत्युत राष्ट्र में चारों ओर—कोने-कोने में—उन का प्रादुर्भाव हो। पाठक स्पष्ट देख रहे हैं कि राष्ट्र के इस ऐश्वर्य की प्रार्थना में 'दूध पीने वाली गौवें' को भी साथ रखा गया है।

२

राज्य और गो-पालन तथा गोपालन के सम्बन्ध में वेद के निर्देष

जिन गौओं का राष्ट्र के व्यक्तियों को वीर और बलिष्ठ बनाने में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसी लिये जो राष्ट्र के ऐश्वर्य का एक अत्यन्त आवश्यक अंग हैं, उन गौवों का राष्ट्र के घरों में उचित भरण-पोषण हो रहा है कि नहीं इस का सदा निरीक्षण रखना वेद में राज्य का भारी कर्तव्य बताया गया है। राजा के इस कर्त्तव्य का अनेक स्थानों पर निर्देश मिलता है। उदाहरण के लिये ऋग्. ६.२८ का निम्न सूक्त देखिये। इस में गो-पालन के सम्बन्ध में कई सुन्दर शिक्षाओं का वर्णन करते हुए इस सम्बन्ध में राजधर्म का भी इशारे से निर्देश कर दिया गया है। सूक्त इस प्रकार है—

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः।।१।।
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्।।२।।
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह।।३।।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनुगावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः।।४।।
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीदृधृदा मनसा चिदिन्द्रम्।।५।।
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु।।६।।
प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः।।७।।
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यातम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये।।८।।

सूक्त के मन्त्रों का अर्थ क्रम से इस प्रकार है—

''(गावः) गौवें (आ अग्मन्) आवें (गोष्ठे) हमारे गोष्ठ अर्थात् गौवों के रहने के स्थान में (सीदन्तु) बैठें अर्थात् रहें (उत) और (भद्रं) हमारे लिये मंगल (अक्रन्) करें (अस्मे) हम में रहती हुई (रणयन्तु) रमण करें अर्थात् आनन्दपूर्वक रहें (इह) यहाँ हमारे घर में ये गौवें (प्रजावतीः) सन्तानों वाली हो कर (पुरुरूपाः) बहुत रूपों वाली अर्थात अनेक प्रकार की (स्युः) होती रहें और इस प्रकार (इन्द्राय) सम्राट के लिये (पूर्वीः) बहुत (उषसः) उषः कालों अर्थात् दिनों तक (दुहानाः) दूध देने वाली बनी रहें।।१।।''

इस मन्त्र से निम्न उपदेश मिलते हैं—

१. हर एक गृहस्थ के घर में गोष्ठ अर्थात् गौवों के रहने का स्थान भी अवश्य रहना चाहिये। कोई घर गौवों के बिना न रहे। गौ पाल कर सब को अपना भद्र करना चाहिये।
२. गौ पालने वालों को इस प्रकार उन की संतानें उत्पन्न करानी चाहिये कि उन से अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम गौवें तैयार हो सकें, जिन में पहले की अपेक्षा अधिक दूध और मक्खन उत्पन्न होता हो, अधिक बलिष्ठ बछड़े और बछड़ियें उत्पन्न होते हों, तथा रूपाकृति की सुन्दरता-विविधता भी पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ती जावे। यह सब भाव **'प्रजावतीः पुरुरूपाः'** इन दो शब्दों का है।
३. ''इन्द्र के लिये दूध देने वाली बने रहें'' इस वाक्य से यह भाव प्रतीत होता है कि गौवों से जो भी दूध-घी की आय गृहस्थों को हो उस में कुछ भाग का राज्य का भी रहना चाहिये।

४. "हम में रहती हुई रमण करें" इस वाक्य की ध्वनि यह है कि जिस प्रकार घर के मनुष्य मिल कर आनन्द से रहते हैं उसी प्रकार हमारी गौवें भी हम में मिल कर आनन्द से रहें। हम अपनी गौवों को अपने जैसा ही समझें और अपने जैसी ही उन की आराम की चिन्ता करें।

"(इन्द्रः) सम्राट् (यज्वने) राज्य-संघटन के लिये अपना भाग दान करने वाले, और इस प्रकार (पृणते) राज्य की आवश्यकताओं की तृप्ति करने वाले के लिये (शिक्षति) अपनी रक्षा देता है, (उपेद्ददाति) और समीप पहुँच कर देता है, (स्वं) उस के धन को (न मुषायति) अपहरण नहीं करता या नहीं होने देता (अस्य) इस के (रयिं) धन को (भूयः भूयः) बार-बार (वर्धयन् इत्) बढ़ाता हुआ (देवयुम्) सम्राट रूप देव को अर्थात् राज्य के भले को चाहने वाले को इस को (अभिन्ने) अभेद्य (खिल्ये) स्थान में(निदधाति) रखता है।।२।।"

यहाँ प्रसंग गौवों का चल रहा है। इस लिये मन्त्र में प्रयुक्त धन शब्द का अर्थ गौ समझना चाहिये। जो व्यक्ति अपने गो-धन की आय में से राज्य को अपना देयांश देता रहता है, राज्य उस की गौवों की रक्षा करता है और उन पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं होने देता, यह मन्त्र का भावार्थ है। प्रथम मन्त्र में **'इन्द्राय दुहानाः'** इन शब्दों में जो बात संक्षेप से कही गई थी वही इस मन्त्र में आकर अधिक स्पष्ट हो गई है और सम्राट् द्वारा गो-धन की आय का कुछ अंश लेने का प्रयोजन भी स्पष्ट हो गया है। राज्य को क्योंकि गौवों की विशेष रक्षा और परवाह करनी है इस लिये प्रत्येक गृहस्थ से एक विशेष गो-कर भी राज्य ले सकेगा।

'भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्' इस वाक्य का भाव यह है कि जिन से लोगों के गो-धन की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रह सके ऐसे उपाय सर्वसाधारण को बताते रहना राज्य का एक कर्त्तव्य होगा। गोपालन और गोसंवर्धन के विशेषज्ञ रख कर राज्य को यह कार्य कराते रहना होगा। तभी उस के लिये लोगों से गो-कर लेना संगत हो सकेगा।

"(ताः) वे गौवें (न नशन्ति) नष्ट नहीं होतीं (तस्करः) चोर, उन पर (न दभाति) प्रहार नहीं करता (अमित्रः) शत्रु का (व्यथिः) पीड़ा देने वाला शस्त्रादि (आसां) इन का (न आदधर्षति) धर्षण नहीं करता (याभिः) जिन से (देवान्) देवों का (यजते) यजन करता है—अर्थात् जिनकी आय से राज्य के संचालक देवों को राज्य-संघटन के लिये कुछ अंश दिया जाता है अथवा जिन के घृतादि से अग्निहोत्रादि यज्ञ किये जाते हैं (च) और (ददाति) अतिथि आदि को घृत-दुग्धादि

का दान करता है (ताभिः) उन के (सह) साथ (गोपतिः) गोपालक गृहस्थ (सचते) देर तक संयुक्त रहता है।।३।।"

क्यों कि सम्राट् द्वारा रक्षा प्राप्त होती है इस लिये–

१. गौवें नष्ट नहीं होने पातीं। राज्य की ओर से गौवों में रोग न होने देने के और रोग हो जाने की अवस्था में उन्हें फैलने न देने के उपाय होते रहते हैं।
२. किसी की गौ को चोर नहीं चुरा सकते।
३. शत्रु लोग उन को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दे सकते।
४. और इस प्रकार गोपालक गृहस्थ के पास उस की गौवें सदा बनी रहती हैं।
५. पाँचवीं शिक्षा इस मन्त्र से यह मिलती है कि गोपति को, गृहस्थ को, अपनी गौवों से सदा देवों का यजन और अतिथि आदि का सत्कार करते रहना चाहिये। देवों के यजन का भाव हम ने मन्त्र के अर्थ में ही संक्षेप से समझा दिया है।

"(ताः) उन गौवों को (रेणुककाटः) धूल उड़ा कर आता हुआ (अर्वा) शत्रु का घोड़ा (न अश्नुते) प्राप्त नहीं हो सकता (ताः) वे गौवें (संस्कृतत्रम्) किसी प्रकार की हिंसा या सूनागृह की (अभि) ओर (न उपयन्ति) नहीं जातीं (तस्य) उस (यज्वनः) यज्वा (मर्तस्य) पुरुष की (ताः) वे गौवें (अभयं) अभय होकर (उरुगायं) फिरने के विस्तृत देशों में (अनुविचरन्ति) विचरण करती हैं। मन्त्र में अर्वा का अर्थ हिंसक भी हो सकता है क्योंकि 'ऋ' धातु के गति और हिंसा दोनों अर्थ होते हैं। तब अर्थ यह होगा कि धूल उड़ा कर आता हुआ कोई व्याघ्रादि हिंसक पशु उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता।।४।।"

क्योंकि राज्य की ओर से रक्षा का पूरा प्रबन्ध रहता है इस लिये–

१. शत्रुओं के घुड़सवार आकर उन्हें भगा कर नहीं ले जा सकते।
२. अथवा व्याघ्रादि हिंसक पशु जंगलों में उन पर आक्रमण नहीं कर सकते।
३. किसी प्रकार की दूसरी हिंसा भी उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती अर्थात् कोई पुरुष उन्हें मार नहीं सकता और वे सूनागृह (Slaughter House) आदि में वध होने के लिये भी नहीं भेजी जा सकतीं।
४. वे निर्भय हो कर चरने के लिये जंगलों में दूर-दूर तक विचरण करती हैं।

मन्त्र में आये यज्वा शब्द का भाव हम ऊपर द्वितीय मन्त्र की व्याख्या में स्पष्ट कर आये हैं।

"(इन्द्रः) सम्राट् (मे) मुझे (गावः) गौवें (अच्छान्) देवे (गावः) गौवें (भगः) धन हैं (गावः) गौवें (प्रथमस्य) उत्कृष्ट (सोमस्य) सोम का (भक्षः) भक्षण हैं (जनासः) हे मनुष्यो, (इमाः) ये (याः) जो (गावः) गौवें हैं (सः) वे (इन्द्रः) परमैश्वर्य हैं (हृदा) हृदय और (मनसा) मन से (इन्द्रं) इस परमैश्वर्य को (चित्) ही (इच्छामि) चाहता हूँ।।५।।"

"मुझे इन्द्र गौवें देवे" इस वाक्य से यह प्रतीत होता है कि गौवों के क्रय-विक्रय पर राज्य का पूरा नियन्त्रण रहना चाहिये। कोई व्यक्ति जो गाय खरीदे उसे पहले राज्य के विशिष्ट कर्मचारी देख लें कि उस में किसी प्रकार का रोग या कोई भयंकर त्रुटि तो नहीं है। जब वे उस के दूध को प्रयोग में लाने योग्य कह दें तभी वह गृहस्थ में घर में जा सकती है। क्योंकि कोई गौ राज्य की अनुमति के बिना क्रय नहीं की जा सकती इस लिये आलंकारिक ढंग में यह कहा जा सकता है कि सम्राट् हमें गौवें देता है। पाठक देखें कि वैदिक राज्य में नागरिकों के स्वास्थ्य की चिन्ता का कितना भार राज्य पर डाला गया है।

गौ का दूध-दही सोम है

गौवों को 'उत्कृष्ट सोम का भक्षण' इस लिये कहा गया है कि उन से ही दूध, दही और घी जैसे उत्कृष्ट सोम पदार्थ प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में कई स्थानों पर दूध-दही आदि को भी सोम कहा गया है। उदाहरणार्थ **'सोमो वै दधि'** (कौ. ८.६) **'सोमः पयः'** (श. १२.७.३. १३), **'रस सोमः'** (श. ७.३.१.३) ब्राह्मण के इन वाक्यों में दूध-दही और घृतादि रसों को विस्पष्ट रूप में सोम शब्द से अभिहित किया गया है। यों प्रसिद्ध सोम ओषधि को भी गौ के दूध-घी के साथ मिला कर भक्षण किया जाता है। सोम में गौ के दूध-घी को मिला देने से और भी अधिक उत्कृष्टता आ जाती है। जो लोग वेद के सोम का अर्थ शराब करते हैं, वेद के इस वर्णन से उन के मत का खण्डन हो जाता है। यहाँ गौ के दूध-दही आदि को सोम कहा गया है। सोम वास्तव में एक ओषधि का नाम है जो स्फूर्तिदायक, शक्ति और बुद्धि की वर्धक होती है और जिस में मादकता बिल्कुल नहीं होती। गौ के दूध-दही में ये गुण होने के कारण उन्हें भी सोम कह दिया गया है।

'गौवें इन्द्र हैं' इस वाक्य में हम ने 'इन्द्र' का अर्थ परमैश्वर्य किया है। पहले वाक्य में इन्द्र (सम्राट्) से गौवें देने की प्रार्थना है। इस वाक्य में गौवों को ही इन्द्र बना दिया है। इस लिये इस वाक्य में इन्द्र का अर्थ सम्राट् से भिन्न कोई दूसरा होना चाहिये। गौवें तो स्वयं

सम्राट् हो नहीं सकतीं। यदि इन्द्र देवता का अर्थ परमात्मा करें तो गौवें परमात्मा भी नहीं हो सकतीं। और इसी प्रकार इन्द्र का प्रसिद्ध पौराणिक अर्थ होने पर वे वैसा इन्द्र भी नहीं हो सकतीं। इस लिये हमें यहाँ अगत्या इन्द्र के धात्वर्थ की सहायता से उस का परमैश्वर्य ऐसा अर्थ करना पड़ता है। इन्द्र को ब्राह्मण में एक स्थान पर **'रुक्म एवेन्द्रः'** (श. १०.४.१.६) ऐसा कह कर सुवर्ण के अर्थ में ग्रहण भी किया गया है। सुवर्ण क्योंकि परमैश्वर्य की वस्तु है इसी लिये उसे इन्द्र कहा है। वेद की दृष्टि में गौवें भी एक प्रकार का धन हैं और उत्कृष्ट कोटि का धन हैं इस लिये गौणी वृत्ति से उन्हें इस मन्त्र में इन्द्र कह दिया गया है जिस से मन्त्र में काव्य का एक विशेष चमत्कार आ गया है। जो स्वयं इन्द्र (परमैश्वर्य) हैं उन्हें इन्द्र (परमैश्वर्यवान् सम्राट्) से माँगा जा रहा है।

इस मन्त्र में गौवों को 'भग' और 'इन्द्र' कहा है। इन दोनों शब्दों का जो वास्तविक और बुद्धि-संगत अभिप्राय है वह ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है। 'भग' और 'इन्द्र' वेद के तथा पुराणों के प्रसिद्ध देवताओं में से हैं। यहाँ गौवों के लिये भी ये नाम प्रयुक्त हो गये हैं। इसी से, वेद का वास्तविक आशय न समझने के कारण, प्रतीत होता है गौ में देवत्व की वह कल्पना कर ली गई है जो प्रचलित हिन्दू-धर्म में पाई जाती है।

"(गावः) हे गौवो, (यूयं) तुम (कृशं चित्) पतले-दुबले पुरुष को भी (मेदयथ) स्निग्धता प्रदान कर के मोटा कर देती हो (अश्रीरं चित्) सुन्दरता-रहित को भी (सुप्रतीकम्) सुन्दर अंगों वाला (कृणुथ) कर देती हो (भद्रवाचः) हे भद्रवाणी वाली गौवो, (गृहं) हमारे घर को (भद्रं) कल्याण युक्त (कृणुथ) कर दो (सभासु) सभाओं में (वः) तुम्हारे (बृहत्) बहुत (वयः) अन्न का (उच्यते) बखान किया जाता है।।६।।"

इस मन्त्र से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है–

१. गौ के दुग्ध और घृत के सेवन से पतले-दुबले शरीर मोटे-ताजे बन जाते हैं।
२. जो सुन्दर नहीं हैं उन के शरीर में गौ के दुग्ध का सेवन करने से स्वास्थ्य-जनित सुन्दरता आ जाती है।
३. जिस घर में गौवें रहती हैं और उन के दुग्ध का सेवन होता है वह घर कल्याण और मंगल से भर जाता है।
४. गौओं में बड़ा अन्न है। इन के दुग्ध, दही, मक्खन आदि में बड़ी उत्कृष्ट श्रेणी की अन्नशक्ति है। इन की इस अन्न-शक्ति का सभाओ में बखान हो सकता है। उन में विद्वानों के व्याख्यान हो सकते हैं, जिन में घण्टों तक गौ के दुग्धादि के

गुणों का वर्णन किया जा सकता है। इन के दुग्धादि के गुणों पर पुस्तकें लिखी जा सकती हैं।

"(सूयवसं) उत्तम घास को (रिशन्तीः) खाती हुई (सुप्रमाणे) उत्तम पानी पीने के स्थानों में (शुद्धाः) निर्मल (अपः) जल (पिबन्तीः) पीती हुई हे गौवो, तुम (प्रजावतीः) पुत्र पौत्रों से युक्त होकर रहो (स्तेनः) चोर और (अघशंसः) पाप करने वाला पुरुष (वः) तुम पर (मा) मत (ईशत) प्रभुता कर सके (रुद्रस्य) परमात्मा का (हेतिः) प्रहरण (वः) तुम्हें (परिवृज्याः) छोड़े रखे अर्थात् तुम शीघ्र न मरो प्रत्युत दीर्घ आयु वाली होओ।।७।।"

इस मन्त्र से निम्न बातें ज्ञात होती हैं–

१. गोवों को जो घास आदि खाने को दिया जाये वह बहुत उत्तम हो। सड़ा, गला, मैला पुराना और बोदा घास उन्हें खाने को न दिया जाये।

२. उन के पीने का पानी भी अति निर्मल होना चाहिये। गदला और किसी तरह के मैलेपन और अपवित्रता से युक्त पानी उन्हें पीने को न दिया जाये।

३. ऐसा करने से उन की सन्तानें उत्तम होंगी। दुर्बल और क्षीण बछड़े-बछड़ी उत्पन्न नहीं होंगे।

४. ऐसा करने से वे देर तक जी सकेंगी। परमात्मा का मृत्यु-रूप शस्त्र उन पर जल्दी नहीं गिरेगा।

५. हमें अपनी गौओं की चोर-डाकुओं से रक्षा करनी चाहिये। ऐसा उत्तम प्रबन्ध रखना चाहिये कि हमारे इस उत्कृष्ट धन को वे पापी लोग हम से अलग न कर सकें। इस का एक उपाय ऊपर द्वितीय और तृतीय मन्त्र में बताया गया है अर्थात् सम्राट् को इस का प्रबन्ध करना चाहिये। प्रजा जनों को इसके लिये राज्य को गो-कर देना चाहिये।

"(आसु) इन (गोषु-उप) गौओं में (इदं) यह जो (उपपर्चनम्) बैल के समीप जा कर मिलने का गुण या इच्छा है (ऋषभस्य) और बैल के (रेतसि) वीर्य में (उप) जो गौओं के पास जाकर मिलने का गुण है वह (इन्द्र) हे सम्राट्, (तव) तेरे (वीर्ये) पराक्रम में अर्थात् तेरे पराक्रम की अधीनता में (उप-उपपृच्यताम्) मिले।।८।।"

इस मन्त्र में यह स्पष्ट है कि सन्तानेच्छा के समय गौ और बैल अपनी इच्छा से न मिल सकें। ऐसा नहीं होना चाहिये कि किसी भी गौ को किसी भी बैल से मिला कर सन्तान

उत्पन्न कराई जा सके। प्रत्युत यह क्रिया सम्राट के पराक्रम के अधीन होनी चाहिये। राज्य की शक्ति का इस पर पूरा नियन्त्रण रहना चाहिये। वे ही साँड सन्तान उत्पन्न कर सकें जिन्हें राज्य के इस विभाग के विशेषज्ञ स्वीकृत कर चुके हों। और ऐसे साँडों से मिलाने से पहले प्रत्येक गोपति गृहस्थ को अपनी प्रत्येक गौ की राज्य के इन विशेषज्ञों से परीक्षा करानी होगी। जो गौ इन द्वारा सन्तान उत्पन्न कराने के योग्य समझी जायेगी वही उन परीक्षित साँडों से मिलने दी जायेगी। गौओं पर राष्ट्र के स्वास्थ्य और बल-वीर्य की निर्भरता है, इस लिये बीमार और दुर्बल गाय और साँड मिल कर दुर्बल बच्चे और शक्ति-हीन दुग्ध पैदा न कर सकें इस का राज्य को पूरा नियन्त्रण करना होगा। इस मन्त्र के ही भाव को वेद के अन्य स्थलों में दूसरे शब्दों में भी स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के लिये अथर्व.१३.१.१६ में राजा से प्रार्थना की गई है, **'वाचस्पते....गोष्ठे नो गा जनय'**–''हे वाचस्पति राजन् ! हमारे गोष्ठ में गौवें उत्पन्न कराइये।'' राजा द्वारा हमारे गोष्ठ में गौवें उत्पन्न कराने का यही भाव है कि हमारी गौओं की सन्तानोत्पत्ति पर राज्य का नियन्त्रण रहना चाहिये। उस के इस विषय के विशेषज्ञ कर्मचारियों की अनुमति प्राप्त किये बिना किसी गृहपति की गौवें सन्तान उत्पन्न न कर सकें। अथर्व. १३. १ के प्रारम्भिक मन्त्रों में राजा के राज्यासीन होने का वर्णन है। राज्यासीन हो रहे राजा को ही इस मन्त्र में वाचस्पति शब्द से कहा है, क्योंकि वह राष्ट्र की वाणी और तदुपलक्षित ज्ञान का रक्षक होता है अथवा स्वयं उत्कृष्ट व्याख्याता होता है।

अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड का २१ वाँ सूक्त भी हलके शाब्दिक परिवर्तन के साथ वही है जो ऋग्. ६.२८ है। अथर्ववेद के सूक्त में ऋग्वेद के सूक्त का केवल ८वाँ मन्त्र नहीं है। पाठक देखें वेद के इन मन्त्रों में गृहस्थ के लिये गोपालन का कितना महत्त्व और उस की कितनी उपयोगिता बताई गई है और इसी लिये उस पर राज्य का कितना नियन्त्रण रखा गया है। इसी प्रसंग में ऋग् १०.१६६ सूक्त भी देखने योग्य है–

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृड।।१।।
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रु स्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ।।२।।
या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि।।३।।

प्रजापतिमह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासाँ वयं प्रजया संसेदम।।४।।

मन्त्रों का अर्थ क्रमशः प्रकार है—

"(मयोभूः) सुख देने वाला (वातः) वायु (उस्राः) गौओं की (अभिवातु) ओर चले, ये गौवें (ऊर्जस्वतीः) बल वाली या रसीली (ओषधीः) ओषधियों को (आरिशन्ताम्) खायें (पीवस्वतीः) मोटा करने वाले और (जीवधन्याः) जीवन देने वाले जलों का (पिबन्तु) पान करें (रुद्र) हे रुद्र, (पद्वते) पैरों वाले (अवसाय) हमारे अन्न, अर्थात् गौवों के लिये (मृड) सुख कीजिये।।१।।"

इस मन्त्र से निम्न निर्देश मिलते हैं—

१. गौवों के रहने के स्थान ऐसे होने चाहियें जहाँ उन्हें सुख देने वाला स्वच्छ निर्मल वायु निरन्तर मिलता रहे। इस से यह भी ध्वनित होता है कि ऐसा वायु प्रभूत मात्रा में मिल सके इस के लिये उन्हें दिन में जंगलों और खेतों में चरने के लिये भी भेजना चाहिये।

२. उन्हें जो ओषधि अर्थात् घास खाने को दी जावें वे बल-वर्धक औा स्वादु रस से भरी होनी चाहियें। ओषधि शब्द की यह भी ध्वनि है कि गौवों के बल और स्वास्थ्य की वृद्धि के लिये उन्हें उपयुक्त रासायनिक ओषधियें भी खिलाते रहना चाहिये।

३. गोवों के पीने का पानी गन्दा, मैला, सड़ा, पुराना न हो प्रत्युत जीवन देने वाला और उन्हें मोटा-बलिष्ठ करने वाला स्वच्छ, ताजा और पवित्र होना चाहिये।

४. 'रुद्र' वेद में कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। रोग निवारक वैद्य के अर्थ में भी इस का प्रयोग हुआ है और सेनापति के अर्थ में भी। परमात्मा के वाचक तो सभी देवतावाची पद प्रायः हैं ही। वैद्य अर्थ में रुद्र द्वारा गौवों के सुखी किए जाने का भाव यह होगा कि ऐसे वैद्यों का प्रबन्ध भी रहना चाहिये जो गौवों के रोगों को दूर कर के उन्हें सुखी करते रहें। सेनापति अर्थ में भाव यह होगा कि राज्य की सेनाओं का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जब हम चाहें तभी हमें उन की रक्षा प्राप्त हो सके। जिस से कोई दुष्ट हमारी गौवों को और इसी लिये हम को दुःखी न कर सके। परमात्मा तो सभी रोगों और सभी दुःखों के नाशक हैं इस लिये उस अर्थ में तो प्रार्थना का भाव स्पष्ट ही है। सायण ने यहाँ रुद्र का अर्थ ज्वरादि-नाशक देव ही किया है। रुद्र के प्राण, अग्नि आदि भी अर्थ होते हैं। उन की संगति भी यहाँ लग सकती है। पर विस्तार भय से हम इतनी दूर तक नहीं जाते।

''(याः) जो (सरूपाः) समान रूप वाली हैं (विरूपाः) विभिन्न रूप वाली हैं (एकरूपाः) सर्वथा एक समान रूप वाली हैं (इष्ट्या) यज्ञ के द्वारा (अग्निः) सम्राट् (यासां) जिन के (नामानि) नामों अर्थात् भेदों को (वेद) जानता है (याः) जिन्हें (अंगिरसः) अंगिरा लोग (तपसा) तप द्वारा (इह) यहाँ (चक्रुः) बनाते हैं (ताभ्यः) उन के लिये (पर्जन्य) हे मेघ ! (महि) बहुत बड़ा (शर्म) सुख (यच्छ) दीजिये।।२।।''

१. **'सरूपाः, विरूपाः और एकरूपाः'** शब्दों की यह ध्वनि है कि हमारे पास अनेक रूपों अर्थात् अनेक प्रकार अथवा श्रेणियों की गौवें रहनी चाहिये। किन्हीं के दूध में मक्खन अधिक हो, किन्हीं के दूध में मलाई अथवा दूध में पाई जाने वाली कोई और चीज अधिक हो, किन्हीं के बछड़े खेती के लिये बढ़िया बैल बन सकते हों।

२. ''अग्नि अर्थात् सम्राट् इन नामों अर्थात् भेदों को जानता है'', इस वाक्य की व्यंजना यह है कि राज्य के पास ऐसे विशेषज्ञ विद्वान् कर्मचारी रहने चाहिये जो आवश्यकतानुसार गौवों के इन रूपों को बढ़ाते रह सकें।

३. ''अग्नि यज्ञ के द्वारा इन के भेदों को जानता है'', यह वाक्य भी सुस्पष्ट है। ज्ञान की सारी बातें यज्ञ द्वारा जानी जाती हैं। यज्ञ अर्थात् सुव्यवस्थित संगतीकरण अर्थात् संघटन के बिना किसी विद्या की उन्नति नहीं हो सकती। आवश्यकतानुसार गौवों की नस्लों (प्रकारों) को बनाने और बढ़ाने के लिये राज्य यज्ञ करता है अर्थात् उपयुक्त विद्वानों के संघटन (Oraganisations) बनाता है।

४. 'अंगिरसः' का अर्थ सायण ने यहाँ 'ऋषयः' अर्थात् ऋषि लोग ऐसा किया है। ऋषि उच्च कोटि के तत्त्वदर्शी विद्वानों को कहते हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में 'अंगिरसः', का और-और अर्थों के साथ एक अर्थ **'प्राणादिविद्याविदः', 'सर्वविद्यासिद्धान्तविदः', 'प्राप्तविद्यासिद्धान्तरसानाम्'**, ऐसा भी किया है। उन के अनुसार विद्या-रस में निमग्न रहने वाले विद्वानों को अंगिरसः कहते हैं। अब, ''अंगिरा लोग तप के द्वारा गौवों को बनाते हैं'', इस का भाव यह हुआ कि विद्या-तत्त्वों के पारदर्शी विद्वान् लोग तप कर के अर्थात् अनेक कष्ट उठा कर गौवों के प्रकारों का निर्माण, उन का संवर्धन, पालन और संरक्षण करते हैं। गौ का दूध, मक्खन आदि स्वास्थ्य के लिये इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि कष्ट उठा कर भी उस की प्रभूत मात्रा में प्राप्ति के उपाय करने चाहिये, यहाँ प्रयुक्त इस 'तपसा' पद की

यह ध्वनि भी है। और ज्ञानी लोग गोपालन के भारी महत्त्व को सदा समझते हैं यह ध्वनि 'अंगिरसः' पद की है।

५. ''पर्जन्य गौवों के लिये बहुत बड़ा सुख देवे'', इस वाक्य का व्यंग्यार्थ यह है कि जहाँ तक हो सके बादल की वर्षा से उत्पन्न हुए जंगल के घास गौवों को अधिक खिलाने चाहिये। इस के लिये उन्हें जंगल में चरने भेजना चाहिये। दिन-रात उन्हें घर में ही नहीं बाँध रखना चाहिये। पानी भी जहाँ तक हो सके शुद्ध वर्षा-जल का ही देना चाहिये।

''(याः) जो (देवेषु) राष्ट्र के भाँति-भाँति के व्यवहारशील लोगों में (तन्वं) अपने शरीर से उत्पन्न दूध को (ऐरयन्त) भेजती हैं, (यासां) जिन के (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों अर्थात् भेदों को (सोमः) सोम (वेद) जानता है (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) अपने दूध से (पिन्वमानाः) सिंचन करती हुई और (प्रजावतीः) सन्तानों से युक्त (ताः) उन गौवों को (इन्द्र) हे सम्राट्, (गोष्ठे) हमारे गौ बांधने के स्थान में (रिरीहि) प्राप्त करा।।३।।''

मन्त्र-गत वर्णन से अधोलिखित बातों का निष्कर्ष निकलता है—

१. भाँति-भाँति के व्यवहार करने वाले राष्ट्र के सभी लोगों को गौ का दूध पीना चाहिये। ''गौवें अपने शरीर से उत्पन्न दूध को देवों में भेजती हैं'', इस वाक्य की यही ध्वनि है।

गौवों की हत्या नहीं की जा सकती

यहाँ गौवों के शरीर से उत्पन्न होने के कारण उन के दूध को ही उपचार से उन का शरीर (तन्वं) कह दिया है। **''अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः''** इन शब्दों के साहचर्य में 'तन्वं' का यही अभिप्राय लेना होगा। गौ को मार कर उस का मांस खाने या उस के मांस द्वारा यज्ञ करने की कल्पना इस मन्त्र से नहीं लेनी चाहिये। क्योंकि गौ को वेद में अनेक स्थानों पर 'अघ्न्या' अर्थात् न मारने-योग्य कहा है। वेद में गौ के अतिप्रसिद्ध नामों में से एक यह 'अघ्न्या' नाम है और उस का वेद में पचासों स्थानों पर प्रयोग हुआ है। वेद में गौ का यह नाम रहते हुए वेद के किसी वाक्य से गो-वध-विषयक अर्थ नहीं निकाला जा सकता है। वेद में निरपराध प्राणियों की हिंसा को बड़ा बुरा और भयंकर कर्म बताया गया है। अथर्व. १०.१.२९ में कहा है—**''अनागो हत्या वै भीमा।''** अर्थात् ''निष्पाप और निरपराध प्राणियों की हत्या निश्चय ही

बहुत भयानक कर्म है।'' निरपराध और निष्पाप प्राणियों की हत्या को भयानक और क्रूर कर्म बता कर वेद सभी प्राणियों की हिंसा को निन्दनीय और निषिद्ध ठहरा देते हैं। उन प्राणियों में गौ भी आ ही जाती है। भला गौ से बढ़ कर निरपराध और निष्पाप प्राणी दूसरा कौन सा होगा ? वेद में स्थान-स्थान पर दोपाये और चौपाये पशु-पक्षी आदि प्राणियों के मारने का निषेध किया गया है। यजुः. १३.४४. में कहा है—**''मा हिंसीर्द्विपादं चतुष्पादम्।''** अर्थात्, ''दोपाये और चौपाये प्राणियों की हिंसा मत करो।'' चौपाये प्राणियों में गौ भी आ जाती है। अतः गौ की हत्या वेद-विरुद्ध है। इस के अतिरिक्त वेद में अनेक स्थानों पर गौ को किसी अवस्था में भी नहीं मारा जाना चाहिये। इस बात का स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। यजुः. १३.४३. में आदेश है—**''गां मा हिंसीः''** अर्थात्, ''गौ की हिंसा मत करो।'' ऊपर ऋग्. ६.२८.४ मन्त्र की व्याख्या में हम देख चुके हैं कि—**''न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि''** अर्थात्, ''गौवों को कभी हिंसा के लिये सूनागृह में नहीं जाने दिया जाता।'' ऋग्. ८.१०१.१५ मन्त्र में स्पष्ट विधि-वाक्य है कि गौ को कभी मत मारो। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—**''माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।''** अर्थात्, ''गौ राष्ट्र के रुद्र, वसु और आदित्य ब्रह्मचारी रह कर विद्या प्राप्त करने वाले प्रजा-जनों की माता, पुत्री और बहिन है। भाव यह है कि प्रजाजनों को गौ के साथ माता, बहिन और पुत्री की भाँति गहरा प्रेमभाव रखना चाहिये। गौ अमृत की नाभि अर्थात् केन्द्र है क्योंकि उस से अमृत जैसे गुणों वाला दूध प्राप्त होता है। मैं परमात्मा, ज्ञानवान् पुरुषों को आज्ञा देता हूँ कि वे निष्पाप और कभी भी न काटी जाने योग्य (अदितिं) गौ को न मारें।'' मन्त्र का भाव अति स्पष्ट है। गौ अमृत पिलाती है। उस के साथ माता, बहिन और पुत्री की तरह प्यार किया जाना चाहिये। वह निष्पाप है। वह कभी काटी जाने के योग्य नहीं है उसे कभी नहीं मारना चाहिये। इन और ऐसे ही अन्य मन्त्रों के रहते वेद के किसी वाक्य से गौ को मारने का अर्थ नहीं निकाला जा सकता। इसी प्रसङ्ग में ऋग्. १०.८७.१६ मन्त्र भी देखने योग्य है। मन्त्र इस प्रकार है—**''यहः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्.क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।''** अर्थात, ''जो व्यक्ति पुरुष के मांस से अपने को पुष्ट करता है, जो राक्षस-व्यक्ति घोड़े के मांस से अथवा अन्य किसी पशु के मांस से अपने को पुष्ट करता है, जो कभी न मारने योग्य (अघन्या) गौ को मार कर उस के दूध को हर लेता है ऐसे इन राक्षस पुरुषों के सिरों को भी हे राजन् (अग्ने), अपने शस्त्र से काट डाल।'' इस

मन्त्र में सभी पुशओं के मांस को खाने का निषेध किया गया है। मांस खाने वाले व्यक्ति को यातुधान अर्थात् राक्षस कहा गया है। मन्त्र के अनुसार मनुष्य को मार कर खाना जैसा भारी अपराध है, किसी पशु को मार कर खाना भी वैसा ही अपराध है, और गौ को मार कर खाना भी वैसा ही भारी अपराध है। ऐसा अपराध करने वाले का सिर भी काटा जा सकता है। मन्त्र के "अपि"—भी—पद की यह ध्वनि है कि यदि ऐसा अपराधी पुरुष समझाने-बुझाने या किसी अन्य दण्ड से ठीक न हो तो उसे सिर काटने अर्थात् मृत्यु का दण्ड भी दिया जा सकता है। गौ को मारने वाले को दण्ड देने का विधान वेद में और भी अनेक स्थानों पर मिलता है। उदाहरण के लिये ऋग्. ७.५६.१७ में कहा है—**"आरे गोहा नृहा।"** "अर्थात्, "गौ को मारने वाला और मनुष्य को मारने वाला व्यक्ति समाज से दूर रहे।" ऐसे व्यक्ति को समाज में नहीं रहने देना चाहिये। उसे जेलखाने आदि में डाल कर समाज से दूर रखना चाहिये। यजुः. ३०.१८. में कहा है—**"अन्तकाय गोघातम्।"** अर्थात्, "गौ की हत्या करने वाले को मृत्यु को सौंप देना चाहिये।" इस प्रकार जब वेद में गो-हत्या को दण्डनीय अपराध माना गया है तो वेद के किसी वाक्य से गौ को मार कर खाने की आज्ञा नहीं निकाली जा सकती।

वेद में एक दूसरे स्थान पर भोजन के सम्बन्ध में कहा है—**"पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्। पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्।"** (अथर्व. १९.३१.५) अर्थात्, "चौपाये और दोपाये पशुओं तथा जो कोई अनाज (धान्य) है उस से मैं पुष्टि प्राप्त करता हूँ। पशुओं का दूध (पयः) पीता हूँ और अनाजों को (ओषधीनाम्) चबा कर उन का रस लेता हूँ। सब को उत्पन्न करने वाले (सविता) और सब के पालक और रक्षक (बृहस्पति) परमात्मा ने मेरे लिये यही नियम बनाया है (नियच्छात्)।" इस भोजन का नियम बाँधने के प्रकरण में यदि पुष्टि प्राप्त करने के लिये पशुओं का मांस खाना भी वेद को अभीष्ट होता तो **"पशूनां पयः"**—पशुओं का दूध—इतना न कह कर **"पशूनां पयः मांसं च"**—पशुओं का दूध और मांस—ऐसा कह दिया जाता तथा पशुओं का दूध पीने और मांस खाने दोनों का ही विधान कर दिया जाता। पर यहाँ तो केवल पशुओं के दूध के पीने का ही विधान किया गया है। इस से स्पष्ट है कि वेद की सम्मति में किसी भी पशु का मांस नहीं खाना चाहिये। और इसी लिये किसी भी पशु को मारा नहीं जाना चाहिये। फलतः गौ का भी दूध ही पीना उचित है। उस का मांस नहीं खाना चाहिये। और इसी लिये गौ को भी मारा नहीं जाना चाहिये। इसी भाँति अथर्व. ४.२७ सूक्त में भी प्रसंग से भोजन के सम्बन्ध में निर्देश आया है। इस

सूक्त में मरुतों का वर्णन है। यहां मरुतों का वर्णन सैनिकों के रूप में है। प्रंसग से इन सैनिकों के भोजन का वर्णन किया गया है। उन के भोजन के सम्बन्ध में कहा है–**''पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।''** (अथर्व. ४.२७.३.) अर्थात्, ''जो ज्ञानी (कवि) मरुत् (सैनिक) गौओं के दूध और भाँति-भाँति के अन्न तथा ओषधियों के रस का सेवन करते हैं और इस प्रकार अपने भीतर घोड़ों जैसी तेज दौड़ने की शक्ति उत्पन्न करते हैं।'' पाठक देखेंगे कि यहाँ सैनिकों–क्षत्रियों–के अन्दर शक्ति का संचार करने के लिये वेद ने गौ के दूध का और अनाज तथा ओषधियों का ही भोजन के रूप में विधान किया है। गौ के या अन्य किसी पशु के मांस का नहीं। वेद के इस प्रकार के मन्त्रों की उपस्थिति में वेद के किसी वाक्य या शब्द से गौ को मारने का अर्थ नहीं निकाला जा सकता। यदि कहीं ऊपर-ऊपर से ऐसा अर्थ प्रतीत होता हो तो उस वाक्य या शब्द का दूसरा अर्थ खोजना चाहिये जो वेद के इन स्पष्ट गोवध-निषेधपरक मन्त्रों से विरोध न खाता हो। इसी लिये हम ने ऊपर 'तन्वं' का अर्थ गौ के शरीर से उत्पन्न होने वाला गौ का दूध किया है। प्रकरण और वेद के आशय के अनुकूल इस पद का यही अर्थ हो सकता है। या इस का अर्थ गौ का चमड़ा कर के यह भाव भी लिया जा सकता है कि जो अपने चमड़े से जूते आदि देती है। यास्काचार्य ने निरुक्त में गौ का अर्थ गौ का चमड़ा भी किया है[1]।

२. 'पिन्वमानाः' (पिवि सेचने) क्रिया का भाव यह है कि हमें गौ का दूध खूब पीना चाहिये। दूध द्वारा हमें अपने आप को सींचना चाहिये। पाव-आध-पाव दूध पीकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये।

३. न्यायाधीश के रूप में राजा का जो स्वरूप प्रकट होता है उसे सोम कहते हैं। सोम गौओं के सब भेदों को जानता है। इस वाक्य का भाव यह है कि राज्य के न्याय विभाग से सम्बन्ध रखने वाले कर्मचारियों को गौओं के सम्बन्ध में सब आवश्क जानकारी रहनी चाहिये। जिस से वे गौवों सम्बन्धी अभियोगों को आसानी से सुलझा सकें।

४. ''इन्द्र गौवों को हमारे गोष्ठ में प्राप्त करा'', इस प्रार्थना से यह ध्वनित होता है कि सम्राट का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे उपाय करे जिन से राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को घर में गौ रखना संभव हो सके। बहुवचन की यह ध्वनि है कि एक ही नहीं,

---

१. निरुक्त २. ५।

प्रत्येक घर में अनेक गौवें रह सकें ऐसा राज्य को प्रबन्ध करना चाहिये।

५. 'प्रजावतीः' शब्द की यह ध्वनि है कि राज्य को यह भी प्रबन्ध करना चाहिये कि प्रत्येक घर की गौवें उत्कृष्ट सन्तानें उत्पन्न कर सकें।

''(विश्वैः) सब (देवैः) विविध व्यवहारशील राज्य के कर्मचारियों और (पितृभिः) सभा और समिति नामक नियामक राज्यसभाओं के सदस्यों के साथ (संविदानः) एक मति को प्राप्त होता हुआ (प्रजापतिः) प्रजा-पालक राजा (मह्यं) मुझे (एताः) इन गौवों को (रराणः) देता हुआ (शिवाः सतीः) इन्हें कल्याणकारी बना कर (नः) हमारे (गोष्ठं) गोष्ठ में (उप आ अकः) भेजे (वयं) हम (तासां) उन गौवों की (प्रजया) सन्तान से (संसदेम) युक्त हो कर रहें।।४।।''

मन्त्र से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है–

१. राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक घर में गौवें रह सकें इस बात का प्रबन्ध करे। वे गौवें सामान्य न हों। शिवा अर्थात् पूर्णरूप से मंगलकारिणी हों। गौवों से मिल सकने योग्य मंगल उन से भली-भांति मिल सकते हों।

२. प्रत्येक गृहस्थ की गौवों से उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न हो सकने का प्रबन्ध भी राज्य को करना चाहिये।

३. राष्ट्र में गो-पालन और गो-संवर्धन के कार्य के सम्बन्ध में आवश्यक बातें करवाने के लिये आवश्यक हो तो राज्य-कर्मचारियों और राज्य की नियामक सभाओं का सहयोग भी प्राप्त कर लेना चाहिये। अर्थात् इस सम्बन्ध में नियामक सभाओं (Legislatures) से नियम पास करवा के राज्य-कर्मचारियों द्वारा उन का पालन करवाना चाहिये। **''देवैः पितृभिः संविदानः प्रजापतिः''**, इस वाक्य का यही भाव है। अथर्व. ७.१२.१. में सभा और समिति के सदस्यों को 'पितरः' कहा गया है। उसी से हम ने यहाँ 'पितृभिः' का अर्थ सभा और समिति के सदस्य किया है। और इस पद के साहचर्य से 'देवैः' का अर्थ हम ने राज्य कर्मचारी किया है। देव शब्द संस्कृत साहित्य में राजा के लिये प्रचुर रूप में प्रयुक्त होता ही है। इस लिये बहुवचनान्त 'देवैः' प्रयोग में यह शब्द राज्य-कर्मचारियों को कहेगा जब कि ये देव, प्रजापति अर्थात् राजा से सम्बन्ध रखने वाले हों।

राष्ट्र के लिये गोपालन का महत्त्व, उस के उपाय और उस के सम्बन्ध में राजा के कर्त्तव्यों पर वेद जो प्रकाश डालता है वह इन मन्त्रों में कितना स्पष्ट है।

३

गोपालन-विषयक कुछ अन्य निर्देश

इस प्रसंग में अथर्व. ३.१४. सूक्त पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये। यह सूक्त भी गोपालन-विषयक ही है। इस में भी गोपालन के सम्बन्ध में अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। सूक्त ६ मन्त्रों का है। स्थानाभाव से हम प्रत्येक मन्त्र का प्रतिपाद अर्थ नहीं देते। वहां से गोपालन के सम्बन्ध में कुछ स्थूल निर्देश करने वाले दो चार वाक्यों को ही हम यहां उद्धृत कर रहे हैं–

सं वो गोष्ठेन सुषदा। अथर्व. ३.१४.१।

शिवो वो गोष्ठो भवतु। अथर्व. ३.१४.५।

अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः। अथर्व. ३.१४.६।

इन वाक्यों में यह कहा गया है कि गौवों के रहने का स्थान (गोष्ठ) ऐसा होना चाहिये जिस में गौवें सुख-पूर्वक बैठ सकें और रह सकें। वह उन के लिये सब भांति शिव अर्थात् कल्याणकारी होना चाहिये। और उस में उन्हें सब प्रकार की पुष्टि प्राप्त हो सके अर्थात् उस में पुष्टिदायक खान-पान आदि का गौवों के लिये पूरा प्रबन्ध रहना चाहिये।

अबिभ्युषीः अथर्व. ३.१४.३।

इस शब्द द्वारा यह निर्देश किया गया है कि ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि हमारी गौवों को कहीं किसी तरह का भी डर न प्राप्त हो सके।

रायस्पोषेण बहुला भवन्ती। अथर्व. ३.१४.६।

इस वाक्य में कहा गया है कि अपने धन द्वारा खूब खिला-पिला कर हमें अपनी गौवों को पुष्ट करना चाहिये जिस से उन की संख्या हमारे घर खूब बढ़ सके।

मया गावो गोपतिना सचध्वम्। अथर्व. ३.१४.६।

अर्थात् "हे गौवो, मुझ गोपति के साथ मिल कर रहो," इस वाक्य की ध्वनि यह है कि प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर में गौवें रख कर गोपति बनना चाहिये।

अनमीवाः। अथर्व. ३.१४.३।

इस शब्द द्वारा कहा गया है कि हमें अपनी गौवों को सदा नीरोग रखना चाहिये। रोगी गौवों का दूध नहीं पीना चाहिये, यह इस शब्द से स्वयं ही निकल आता है।

विभ्रतीः सोम्यं मधु। ३.अथर्व. १४.३।

अर्थात् "गौवें सोममय अर्थात् सोम[1] के गुणों से युक्त मधुर दूध अपने अन्दर रखती हैं" इस वाक्य से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वेद में गोपालन का इतना अधिक महत्त्व क्यों है।

सं वः सृजतु...समिन्द्रो यो धनंजयः। अथर्व. ३.१४.२।

अर्थात् "धन-प्रदाता सम्राट् (इन्द्र) तुम्हें मेरे साथ जोड़े या मेरे यहां उत्पन्न करे (संसृजतु)।" इस वाक्य द्वारा इस सूक्त में भी राज्य का कर्त्तव्य बता दिया गया है कि वह ऐसा प्रबन्ध करे जिस से सोममय दूध का पान कराने वाला गोधन राष्ट्र के प्रत्येक गृहपति के घर में रह सके।

४

गौवों को कैसे साँड से मिलाया जाये ?

गौवों की उत्तम नस्ल प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि उन का उत्तम वृषभों को साथ संयोग करा कर सन्तानें उत्पन्न कराई जायें। वेद में इस के महत्त्व को बहुत अधिक समझा गया है। अथर्ववेद के न.म काण्ड का चतुर्थ सूक्त बड़े-बड़े २४ मन्त्रों का है। इस सूक्त में सन्तानोत्पादन के लिये नियुक्त किये जाने वाले वृषभ की महिमा गाई गई है और आलंकारिक ढंग में यह उपदेश किया गया है कि यदि किसी के घर में कभी बहुत उत्तम कोटि का बछड़ा उत्पन्न हो जाये तो उसे नगर की गौवों में सन्तान उत्पन्न करने के लिये दान कर देना चाहिये। उसे 'ऐन्द्र' बना देना चाहिये अर्थात् राज्य को सौंप देना चाहिये। वेद की दृष्टि में यह कार्य बड़ा पवित्र है, क्योंकि इस से राष्ट्र के लोगों का कल्याण होता है। इस लिये यज्ञ कर के, ब्राह्मणों को दान कर के उन द्वारा राष्ट्र के काम पर उस वृषभ को नियुक्त कराना चाहिये। सूक्त के २१ वें मन्त्र में सम्राट् (इन्द्र) का कर्तव्य भी बताया गया है कि वह उत्तम वृषभ-रूप चेतन धन राष्ट्र को प्रदान करे और इस प्रकार उत्तम दूध देने वाली, सदा बछड़ों से युक्त, धेनु हमें देता रहे। प्रजाजनों या राज्य (इन्द्र) की ओर से जो वृषभ सन्तानोत्पत्ति के लिये नियुक्त किया जाये वह **'साहस्रः'** (अथर्व. ९।४।१) अर्थात् सहस्रों बच्चे उत्पन्न कर सकने में समर्थ

---

१. जो लोग सोम का अर्थ शराब करते हैं उन की धारणा का वेद के इस वाक्य से खण्डन हो जाता है। यहाँ गौ के दूध को सोम के गुणों वाला कहा गया है। वास्तव में वेद का सोम एक ओषधि है जो शक्ति और स्फूर्ति देती है, बुद्धि-वर्धक होती है और जिस में मादकता बिल्कुल नहीं होती।

हो, **'त्वेषः'** (६।४।१) अर्थात् बड़ा तेजस्वी हो, **'ऋषभः'** (६।४।१) अर्थात् गतिशील, चंचल, फुर्तीला हो, **'पयस्वान्'** (६।४।१) अर्थात् बहुत दूध देने वाली नस्ल की गौ का पुत्र हो जिस से उस की सन्तानें भी दूध दे सकें, **'उस्त्रियः'** (६।४।१) उस्रा अर्थात् गौवों से सम्बन्ध कर सकने योग्य हो, **'पुमान्'** (६।४।३) अर्थात् पुरुषत्व युक्त हो, **'अन्तर्वान्'** (६।४।३) अर्थात् गर्भ धारण करने में समर्थ हो, **'स्थविरः'** (६।४।३) स्थिर प्रकृति का हो अर्थात् अपने गुणों को स्थिर रखता हो। ऐसा वृषभ नियुक्त करने का प्रयोजन यह है कि वह **'तन्तुमातान्'** (६।४।१) अर्थात् सन्तान-रूप तन्तु को आगे फैला सके। क्योंकि यह वृषभ **''पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्''** (६।४।४)—उत्तम बछड़ों का बाप और गौवों का पति होता है, **''प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः''**—(६।४।४) इस के वीर्य से ताजा दूध, पीयूष, आमिक्षा और घृत प्राप्त होते हैं, **''सोमेन पूर्णं कलशं विभर्षि''** (६।४।६) **''आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः''** (६।४।७)—इस के कारण 'सोम'[1] जैसे दूध के घड़े भरे जाते हैं और इसके वीर्य के कारण आज्य और घृत प्राप्त होता है'', **''त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्''** (६।४।६)—''यह रूपवान् बच्चे उत्पन्न करने वाला होता है'', और क्योंकि इस के कारण ही **''इन्द्र, वरुण, मरुत्''** आदि (६।४।८) राज्याधिकारी देवों के शरीरों में ओज भरने वाला दूध प्राप्त होता है, इस लिये यह वृषभ स्वयं भी एक दिव्य वस्तु है। वृषभ की इसी दिव्यता को ध्यान में रख कर सूक्त में उस का एक बड़ा सुन्दर आलंकारिक वर्णन किया गया है—उसे सभी देवों का रूप बना दिया गया है। स्थानाभाव से हम सूक्त के आलंकारिक वर्णन से युक्त और संख्या में प्रचुर मन्त्रों का यहां प्रतिपद अर्थ देने में असमर्थ हैं। सूक्त का सारांश ही हम ने इन पंक्तियों में दिया है।

यज्ञों में गो-हिंसा वेद-विरुद्ध है

सायणादि भाष्यकार इस सूक्त को बैल को मार कर उस के मांस से यज्ञ करने में लगाते हैं। यह उन की भूल है। मार कर जिसे यज्ञ में जला दिया गया है उस बैल से ऊपर वर्णित चीजें प्राप्त नहीं हो सकतीं। सूक्त के अन्तिम मन्त्र **''एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र**

---

१. इस मन्त्र में गौ के दूध को सोम जैसा कहा गया है। जो लोग सोम का अर्थ शराब करते हैं उन के मत का वेद के इस वाक्य से खण्डन हो जाता है। सोम वास्तव में एक ओषधि है जिस का रस स्फूर्तिदायक, शक्ति और बुद्धि का वर्धक होता है और जिस में किसी प्रकार की मादकता नहीं होती।

तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु, मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम्'' (६.४.२४) में गोओं को सम्बोधन कर के कहा गया है कि ''इस युवा ऋषभ (वृषभ) के साथ हम तुम्हें मिलाते हैं, इस के साथ खेलती हुई इच्छानुसार विचरण करो, हमें कभी अपनी सन्तानों से हीन न करो और ऐश्वर्यों की पुष्टियों से हमें युक्त करो।'' यह वर्णन यज्ञ में जला दिये गये ऋषभ पर कभी नहीं घट सकता। यह हमारे दिखाये हुए अर्थ में ही संगत हो सकता है। सूक्त में प्रयुक्त हुए ''जुहोति'' क्रिया के रूपों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। ''हु'' धातु का अर्थ ''दान'' भी होता है। क्योंकि यजमान अपने उत्कृष्ट ऋषभ को राष्ट्र के काम के लिये दान कर रहा है, इस लिये वह उस का हवन ही है। अन्यत्र वेद में गौ को मार कर उस से यज्ञ करने का स्पष्ट निषेद किया गया है। उदाहरण के लिए अथर्ववेद का निम्न मन्त्र देखिये–

''मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरंगै : पुरुधायजन्त, य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः,'' (अथर्व. ७.५.५) अर्थात् ''वे याज्ञिक लोग (देवाः) मूर्ख और अज्ञानी (मुग्धाः) हैं, जो कुत्ते से (शुना) यज्ञ करते हैं अथवा गौ के अंगों से भांति-भांति के (पुरुधा) यज्ञ करते हैं। जो इस यज्ञ को मन से जानता है वही हमें यज्ञ के रहस्य को बता सकता है, ऐसे यज्ञ के रहस्यवेत्ता ज्ञानी को ही हमें बताओ।'' इस मन्त्र में पशुओं की बलि दे कर यज्ञ करने की निन्दा की गई है। ऐसे यज्ञ करने वालों को मूर्ख कहा गया है। निकृष्ट पशुओं में कुत्ता गिना दिया गया और उत्तम पशुओं में गौ गिना दी गई। बीच में सभी प्रकार के पशु आ गये। किसी भी पशु की बलि दे कर यज्ञ करने वाला याज्ञिक मूर्ख है। यज्ञ तो मन से विचार-पूर्वक काम करने का नाम है। ऐसे कामों में पशुहिंसा का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार इस मन्त्र में पशुमात्र की बलि से यज्ञ का निषेध करते हुए गौ की बलि से यज्ञ का तो स्पष्ट ही निषेध कर दिया गया है। ऐसे यज्ञों को मूर्खों का काम बताया गया है। इस मन्त्र की उपस्थिति में वेद के किसी संदर्भ को गौ की बलि दे कर यज्ञ करने-विषयक अर्थ में नहीं लगाया जा सकता। इस लिये अथर्ववेद के इस ६.४ सूक्त को सायणादि भाष्यकारों ने जो बैल को मार कर उस के मांस से यज्ञ करने में विनियुक्त किया है वह वेद-विरुद्ध है। फिर जैसा हम ने ऊपर दिखाया है सायणादि का यह अर्थ इसी सूक्त की अन्तःसाक्षी के भी विरुद्ध है।

वेद में गोपालन के महत्त्व और इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्बन्ध में राज्य के कर्त्तव्य

को अनेक प्रसंगों में बताया गया है। स्थानाभाव हमें इस प्रसंग में अधिक लिखने से रोकता है।

वेद में गोपालन का जो स्थान है वह पाठकों ने देख लिया है। हिन्दू जाति में गौ के प्रति जो आदर और स्नेह की गहरी भावना पाई जाती है उस का मूल स्रोत आर्यों के धर्मग्रन्थ वेद में गोपालन के सम्बन्ध में दिये गये उपर्युक्त और इन जैसे अन्य महत्त्वपूर्ण उपदेश ही हैं। ऋषि दयानन्द वेद के परम प्रचारक थे। इसी लिये वे गोपालन का प्रचार भी देश में पूरे बल से चाहते थे। इसी कारण उन्होंने 'गोकरुणानिधि' लिखी और गो-रक्षिणी सभाओं का आन्दोलन चलाया था। वेद के ये उपदेश और ऋषि का जीवन हम आर्यों का गो-रक्षा के सम्बन्धं में जो कर्त्तव्य है उस की ओर स्पष्ट निर्देश करते हैं।

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।